बाहु-बली

(राष्ट्रीय-काव्य)

श्री 'हीरक'

बाहु-बली

(राष्ट्रीय-काव्य)

श्री 'हीरक'

—: समर्पण :—

सरल सहृदय धर्मनिष्ठ महामना,
सौम्य-आकृति, भव्य झरने नेह के।
हस्त-कमलों में समर्पित काव्य यह,
पूज्य अग्रज धन्य 'धन्नालाल' के॥

विनत-अनुज
'हीरक'

प्रकाशक—
हिन्दी-प्रकाशन-भवन
बाँसफाटक, काशी।

भूमिका

वर्तमान युग गीति-काव्य का युग है। इस व्यक्तिवादी युग में अपने व्यक्तित्व और अपनी आकांक्षाओं में सीमित मानव अपने अतीत गौरव के प्रतीक-स्वरूप महापुरुषों का गुण-गान करना भूलता-सा जा रहा है। एक वह युग था जब तपस्वी और ऋषि-मुनि भी महापुरुषों और महावीरों का गुण-गान किया करते थे। भेंट देने पर वे साधारण कुशल-प्रश्न के पश्चात् इस प्रकार का प्रश्न पूछा करते थे जैसे वाल्मीकि ने नारद से प्रश्न किया था कि :—

कोऽन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके, गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च, सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः॥

और उत्तर में नारद मुनि की भाँति किसी ऐसे महापुरुष का गुण-गान होता था जो—

समुद्र इव गाम्भीर्ये, धैर्येण हिमवानिव।
विष्णुना सदृशो वीर्ये, सोमवत् प्रियदर्शनः॥
कालाग्निसदृशः क्रोधे, क्षमया पृथिवीसमः।

हुआ करता था। परन्तु आजकल वाल्मीकि के समान प्रश्न करने वाले और नारद के समान उत्तर देनेवाले कहाँ हैं ?

आज तो सभी लोग अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग अलापनेवाले हैं। यदि कोई उनकी बात का खंडन करता है तो उसे मुँहतोड़ उत्तर मिलता है कि :—

You Say, I am wrong.
Who are you, who is any body-
to Say I am wrong ?
I am not wrong.

D. H. Lawrence.

ऐसे युग में, श्री हीरालाल पांड़े "हीरक" का यह प्रयास, जिसमें उन्होंने एक महापुरुष का गुण-गान किया है, सचमुच प्रशंसनीय है।

प्रस्तुत काव्य "बाहु-बली" का शीर्षक पढ़कर ही मुझे जैनेन्द्रजी की प्रसिद्ध कहानी बाहु-बली का स्मरण हो आया, परन्तु पूर्ण काव्य पढ़ जाने पर यह स्पष्ट हो गया कि जैनेन्द्रजी की कहानी का प्रभाव कवि पर कुछ भी नहीं पड़ा। कवि ने सरल भाव से जैन-पुराण की एक प्रसिद्ध कथा को काव्य का रूप देने का प्रयास किया है।

जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव और उनके प्रतापी पुत्र भरत और बाहु-बली की यह कथा जैनधर्मावलंबियों को विशेष रुचिकर होगी। राष्ट्रीय वातावरण का प्रभाव कवि पर पड़ा है, जिसकी झलक काव्य में मिलती है। पञ्चम सर्गमें प्रजातन्त्र-राज्य का दृष्टि-कोण स्पष्ट हो जाता है। कथा में जो काव्य के अनुकूल परिवर्तन किया गया है वह संभवतः धार्मिक-प्रवृत्ति वालोंको इष्ट न होगा, फिर भी यह अत्यन्त आवश्यक है। परिवर्तन संसार का एक अटल नियम है और इस नियम की उपेक्षा करके किसी वस्तु को सीमित रखना सम्भव नहीं।

कवि का यह प्रथम प्रयास है। इसमें वह चमत्कार और प्रौढता नहीं जो खंडकाव्यों में अपेक्षित होती है। इसके विपरीत काव्यमें सरलता है। कथा का प्रारम्भ ऋषभदेवके वैराग्यसे होता

है और बाहु-वली के वैराग्य के बाद भारत के राज्याभिषेक से इस की परिसमाप्ति होती है। इन दो के बीच भरत का दिग्विजय और भाई-भाई (भरत और बाहु-वली) का द्वन्द्वयुद्ध, दो महत्व पूर्ण घटनाएँ हैं। इस काव्य में यद्यपि नारी के लिए कोई स्थान नहीं था क्योंकि परंपरा से नारी इन दोनों में विघ्न और बाधा स्वरूप मानी गई है। परन्तु कवि ने इस काव्य में नारी को भी स्थान दिया है और महत्वपूर्ण स्थान दिया है। भरत की राज-महिषी सुभद्रा और बाहुवली की धर्मपत्नी गुणमाला ने दो भाइयों के युद्ध निवारण के लिए जो प्रयत्न किये वे असफल होने पर भी महत् थे। राज्य लक्ष्मी के मोह में पड़े दोनों वीरोंने अपनी गृह-लक्ष्मियों की बात नहीं मानी परन्तु नारी-हृदय की कोमलता और विवशता का यह चित्र प्रस्तुत काव्य का उत्कृष्ट अंश है।

बाहु-वली में निर्भीकता और वीरता के साथ ही सरलता है, इसी कारण वह भरत पर विजय प्राप्त करके अभिमान नहीं करता अपने दिग्विजयी भाई को नीचा दिखाकर भी वह दिग्वि-जयी नहीं बनना चाहता वरन् राज्य-वैभव का मोह छोड़ कर वैराग्य ले लेता है। वह भरत से कहीं अधिक समर्थ है परन्तु भरत जैसी महत्वाकांक्षा उसमे नहीं हैं इसी कारण वह राज्यलक्ष्मी का मोह सरलता से छोड़ सका है। एक ओर उसकी वीरता प्रशं-नीय है तो उसका वैराग्य भी कुछ कम प्रशंसनीय नहीं। उसकी तुलना में दिग्विजयी भरत सचमुच ही छोटा है।

प्रस्तुत काव्य में प्रकृति वर्णन और युद्ध-वर्णन साधा-रण अच्छे बन पड़े हैं। वैराग्य-चिन्तन तो सुन्दर हुआ है। काव्य की भाषा पर संस्कृत-पदावली की छाया है जिसने हिन्दी भाषा के सौन्दर्य का अपहरण किया है! कवि का यह प्रथम प्रयास है इस दृष्टि से इसे सफल काव्य कहा जा सकता है।

आशा है भविष्य में श्री हीरालाल पांड़े, 'हीरक' इससे भी अधिक सफल और सुन्दर काव्य प्रस्तुत कर हिन्दी-साहित्य और जैन-समाज का हित करेंगे।

दुर्गाकुंड, काशी। डा० श्री कृष्णलाल
पौष कृष्ण अष्टमी सं० २००४ एम०ए०पी०एच्०डी०

कवि की ओर से—

काव्य के विषय में मैं क्या लिखूँ, जो लिखना था, काव्य में लिख चुका। मैंने प्राचीन, पौराणिक और ऐतिहासिक कथानक को राष्ट्रीय दृष्टिकोण से काव्य की परिधि में सीमित करने की चेष्टा की है। ऋषभदेव और भरत का संक्षिप्त परिचय वैदिक साहित्य से मिलता है। यदि विस्तृत वंश-परिचय एक ही जगह पाना चाहें तो जैन-पुराणों में मिलेगा। भरत के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्वामी कर्मानन्दजी लिखित "भारत का आदि सम्राट्", पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए।

आदरणीय प्रो० डा० श्री कृष्णलालजी, एम० ए० पी० एच० डी० (अध्यापक, हिन्दी-विभाग, बनारस हिन्दू-विद्यालय) का अत्यंत आभारी हूँ जिनने भूमिका लिखी और भाषा-दोष दूर करने में सहायता दी।

नागपुर-विश्व-विद्यालय के स्नातक श्री बाबूलालजी 'कुमुद' का भी आभारी हूँ जिनने मुझे अनेक सुझाव दिए।

मैं जिसे अपने से अभिन्न मानता हूँ, उसका आभार किन शब्दों में व्यक्त करूँ।

इस काव्य की परिसमाप्ति पुण्य-पर्व दीपावली, ई० सन् १९४७, के दिन ब्राह्म-मुहूर्त में, गुड़ओली, नागपुर में हुई थी।

अन्त में मैं दो शब्द लिख लेखिनी से विश्राम लूँगा।

मैं व्यथा में लिख सका हूँ काव्य को,
मैं व्यथा में ही प्रकाशित कर रहा।
मैं व्यथा में हृदय के उद्गार को—
वेदना की लेखिनी से लिख रहा॥

नव वर्ष-दिन,
सन् १९४८

हीरालाल पांड़े 'हीरक'

काव्य-गत पात्रों का संक्षिप्त परिचय

वृषभ और ऋषभ = भरत और बाहु-वली के पिता के नाम

भरत = बाहु-वली का अग्रज

बाहु-वली = भरत का अनुज

हेम-बुद्धि = भरत का मंत्री (कल्पित नाम)

महावल = गुणमाला का पुत्र

सुनंदा, नंदा, } वृषभ-देव की दो रानियाँ

सुभद्रा = भरत की रानी

गुणमाला = बाहु-वली की रानी (कल्पित नाम)

वेला = सुभद्रा की दासी (कल्पित नाम)

वृषभ-वैराग्य

उत्तुंग गगनचुम्बी सुन्दर था सप्तखंड प्रासाद-शिखर।
था सुधालिप्त, रौप्याद्रि-सदृश जिस पर बैठे राजर्षि प्रवर॥
उत्ताल तरंगों की लहरी उनके मानस में उठती थी।
दार्शनिक देव की मुद्रा वह गीष्पति की उपमा हरती थी॥
भावों की धारा वेगवती निकली सरिता की धारा सी।
जो बनी, विषमता-वल्ली की उन्मूलन-कर्त्रि कुठारा सी॥
थे भाव वृषभ के अत्युन्नत जीवन संघर्ष-समन्वित है।
संघर्ष-समन्वित मानवता कल्याणकरी जग-स्वीकृत है॥
माया उपाधियाँ भंगुर हैं भंगुर भव-सुख की लेखाएँ।
चंचल चपला की ज्योति-तुल्य देखी लक्ष्मी की खेलाएँ॥
मैं जनता का शासक सेवक माना जाता जो घातक है।
सेवा में पाते जो मेवा उनको शासन भय-कारक है॥
मानवता जग में सुखकारी मानवता सब में है समान।
मानवता मानव को देती वृन्दारक-पद उन्नत महान॥
मानव बन मानवता में निज खो देना अति क्षेमंकर है।
संघर्ष-युक्त जीवन का जो परिणाम विशद श्रेयंकर है॥
मानव भूला वह जो करता है मान दशा का मानी हो।
करवटें दशाएँ लेती हैं कैसे कुल का मद अक्षय हो॥
मानव निज का निर्माता है निर्माता अपने गौरव का।
उस गौरव का जिस गौरव में जन खो देता दुःख जगती का॥

मैं मानव हो के राजा हूँ राजा हो के मानव हूँगा।
मैं मानव बन मानव-हितार्थ सर्वस्व समर्पित कर दूँगा॥
सब में समानता, सत्य ज्ञान, इसको निज में जो पाजाऊँ।
भूले जग की निज-विस्मृति को, कर दूर सत्य को दिखलाऊँ॥
सहसा पश्चिम में दृष्टि पड़ी, देखा किरणों का मुरझाना।
रवि छाया का जीवन उनने, पाया सत का तम में जाना॥
दिन नाथ चले अस्ताचल को, विधि से हारे बलवान सभी।
विधि को जीता किसने बोलो, विधि रेखा किसकी कहाँ टली॥
जिसने प्रकाश से मुँह मोड़ा, उसको तम ने आक्रान्त किया।
प्रत्यक्ष सूर्य का है प्रमाण, तम ने मानव को भ्रांत किया॥
जो है प्रकाशमय उसका ही, होता वियोग अति दुःखकारी।
इसलिए दिशाएँ साँझ समय, करतीं करुणा-क्रन्दन भारी॥
तम-संग न होता हितकारी, दोषों का वह उत्पादक है।
होतीं विलीन हैं सभी दिशा, जग-दृष्टि-अन्धता-कारक है।
देखी संध्या अनुराग-भरी, निज प्रिय पति के पा जाने से।
देखा प्रदोष के बाद नील-नभ द्योतित जगमग तारों से॥
संदेश मिला तारों से था, निर्मल जीवन कैसा होता।
है अंधकार भी महाधन्य, जो निर्मलता में लय होता॥
कर से पीयूष-प्रवाह झरा, जगती में नव रस भर आया।
लख चंद्र-चंद्रिका-शोभा को, मानव का मानस लहराया॥
उस दिवस सुनंदा, नंदा दो, निज-नाम सार्थता-कारक थीं।
दोनों ही प्राण चकोरों की, उन्मुक्त पिपासा-धारक थीं॥
थे वृषभ किन्तु चिन्ता-व्याकुल, जग की अनित्यता गोचर थी।
लख देव उदासी-सहित बनीं, दोनों ही चिन्ता-चिह्नित थीं॥

दोनों ने पूछा, मौन भंग- हो गया, वृषभ धीरे बोले।
मैं सोच रहा जग की गति को, जो माया दोला में डोले॥
मैं देख रहा मानव क्षण-क्षण, विश्वास न जीवन का करता।
बन ने अमर्त्य फिर भी मानव, करता प्रयत्न शत-शत रहता॥
इन विषयों की मधु पी कर के, पागल मानव-मन सोता है।
जो क्षण-भंगुर जिन में न कभी, देखो, अनंत सुख होता है॥
मधु-विन्दु-हेतु असि-धारा का, देखो चेतन लेहन करता।
वह नहीं सोचता क्या होगा, जो कहीं दूरदर्शी बनता॥
यमराज-हस्त से छुड़ा सके, धन, मित्र, बंधु क्या मानव को।
देता क्यों मानव तिल-अंजलि, भू-स्वर्ग करी मानवता को॥
दानवता सीखा करता क्यों, कर मानवता का तिरस्कार।
तृष्णा के वश में अपनापन, खो देता शतधा छिन्न-तार॥
माया-अवहेला जिनने की, उसने न कभी उनको छोड़ा।
शिव की लक्ष्मी ने मानव से, निज जीवन का नाता जोड़ा॥
पा अवसर दोनों वे बोलीं, गतपंक, प्राणधन, हे उदार।
उत्कृष्ट विमल मणि मुक्ता से, पाये निर्मल हमने विचार॥
बोलीं प्रशस्त संघर्षमयी, जीवन में बाधा-निवारण।
श्रेयस्कर शान्त सुखान्त सदा, देता सुख-निधि जगहित-कारण॥
बढ़ना जीवनका लक्ष्यविन्दु, जो अतुलित-सुखका निधि-निधान।
दानवगण से वसुधा का जो करता विपदा में परित्राण॥
हम देंगी साथ तुम्हारा प्रिय होंगे विचार जो रखें आप।
हम नर की नारी लक्ष्मी हैं, कर पाया उनका कौन माप॥
कर्तव्य निभाया सदा पूर्ण, छोड़ा समाज भी कभी नहीं।
कर्तव्य अंत है एक श्रेष्ठ, जिससे प्रिय को भूलें न कहीं॥

हम भोग विलासों की रानी यह भूल न मन में भाव धरो।
रख हीन संकुचित ये विचार, मत नारी का अपमान करो॥
दो उसको अवसर देखो फिर, कर कौन कार्य दिखलाती है।
जो श्रेय मार्ग की बाधा को दृढ़ वज्र-भित्ति बन जाती है॥
वह नारी है जो लाज रखे, निज की निज के प्रिय-पक्षों की।
विपरीत चले जो बनती है आरी गरिमा की वल्ली की॥
सुन कर प्रसन्न हो गये देव, बोले मेरी मानस पुकार।
मैं आदर करता दोनों ने जो प्रकट किये हैं शुभ विचार॥
होते प्रभात परिषद् में वे, पहुँचे पहिले कुछ कर विचार।
विद्वान सुझाते क्या देखो, जो कहलाते मन के उदार॥
जो धर्म-रहस्य-परिज्ञाता, थे बोले भूपति! धन्य, धन्य।
है वंश धन्य वसुधा सारी, होगा समाज भी धन्य धन्य॥
वैराग्य हृदय में भूपति के, बढ़ते-बढ़ते हो गया सबल।
जीवन का अन्तिम प्राप्य सत्य, पाने को होते गये विकल॥
वह दिन बीता आई संध्या, निज अंक राग-मय बाल लिए।
या मानों प्राची ने प्रिय के–प्रति नव्य भव्य अरमान लिए॥
आया प्रकाश तम भाग चला, यह ही जीवन का लेखा है।
यह प्रकृति सदा अपना परिचय, देती सब ने ही देखा है॥
वे आँखें जिनमें है विवेक, वे आँखें जिनमें उच्च भाव।
वे परिवर्तित युग कर देते, जो छोड़ें जग के हाव चाव॥
खिल गई कमलिनी, सुप्त हुई-देखो विषाद की महारात।
यह पवन लिए अँगड़ाई अब, करता कण-कण से बात बात॥
देखो चकोर तम ओर चले, रोती कुमोदिनी नव बाला।
बंधन इसको ही कहते हैं, जिसमें मानव मन मतवाला॥

वृष-भेश देखते थे लीला, इस ओर प्रकृति के प्रांगण में।
अभिराम भाव शत प्रतिबिम्बित, होते आदर्श-सदृश मन में॥
बढ़ चले भाव घन-पुंज हुए बन गया वह अचल स्थायिभाव।
उल्लसित हुए मन में शतशः, वृषभेश हीन-वैभव-प्रभाव॥
उपवन में देखा जा बसन्त, मलयानिल कलियों से बोला।
खोलो घूँघट-पट देखो तो, सुषमा ने बदला नव चोला॥
कोकिल बोली प्रति पल्लव पर, दी धीरे ताल पवन ने थी।
हो गया समीरण मत्तहृदय, आशा जागी मिलने की थी॥
शत शत रसाल, शत नीप, लता, सब में समानता आई थी।
माधव में था गत निज विवेक, मादकता सब में छाई थी॥
पुष्पों की राजि निहार रही, थी लगा दृष्टि नभ ओर अचल—
उस विधि को जिसने उसको दी, वह दान-हेतु निधि सुरभि विमल॥
वृक्षाश्रित दोला पवनेरित, ज्यों झूल रहा युवती-मंडल।
वल्ली-वितान था लजा रहा, नभ ओर यान लखकर अंचल॥
युवती मदमाती चलती थी, युवकों का मन था रीझ रहा।
उनके अंगों की सौरभ से, था, मलय-पवन तब खीज रहा॥
था सूर्योदय पर सूर्यमुखी, थी, मुरझाई लख चन्द्रोदय।
इसलिए शनैः करताडनसे, बदला लेता जाता था वह॥
माधवीलता थी अतिकंपित, थी आम्रलता भी शरमीली।
वेला वेला में लजा रही, थी चंपा बेचारी पीली॥
नलिनी नीली पड़ गई देख, उनके कंजों में नयन-युगल।
मेचकित मसृण, जिनसे सुंदर, हरिणी के हारे नयन-चपल॥
मधुकर मनहर वह दृश्य देख, कविता करते क्षण-क्षण सुंदर।
प्रतिपद सुमनों से ले पराग, मुखरित करते नव गीत मधुर॥

राजर्षि सुशोभित उपवन में, थे, नंदन में ज्यों आखंडल।
थीं बालाएँ सुर-बालाएँ, थे कल्प-वृक्ष-सम तरु-मंडल॥
लौटे आनंदित देख प्रकृति, सुषमित पुष्पों का नव विकास।
वे चाह रहे थे पा जाना, शिव-लक्ष्मी का सुंदर सुहास॥
प्राकृतिक बाह्य-सौन्दर्य उन्हें, कर मुग्ध प्रेरणा देता था।
तुम करो स्वात्म-सौन्दर्य प्राप्त, यह अंतरङ्ग बन कहता था॥
वह अंतरङ्ग सौन्दर्य बाह्य—सौन्दर्य लीन जिसमें होता।
होता अभेद्य संबंध, बाल—रवि से क्या राग पृथक् होता॥
मध्याह्न बिताया परिषद् में, पाये विचार नव-नव विलास।
हो गया हृदय उनका ज्योतित, जैसे प्रभात में जग-विकास॥
आई संध्या रवि अस्त हुआ, वह चला, निरत्यय नहीं विभव।
मत गर्व करो होगा न सहन, पतनोन्मुख होने पर परिभव॥
था अन्धकार कहता जाता, तम में भी रहता है प्रकाश।
मानव पाता ही सदा रहा, तम में जीवनप्रद नव विकाश॥
दिन चला साथ में सूर्य-संग, जिसका आश्रय पा बढ़ा हुआ।
यह न्याय सज्जनों को सुखकर, जो जग का शिक्षक सदा हुआ॥
आई रजनी तारे चमके, था गगन नील नीली सारी;
दोषाकर चमका दोनों से, दोनों की सुषमा थी न्यारी॥
होते प्रभात रवि को देखा, जो राग लिए मंगल-कारी-
किरणों से देता नव जीवन, पाता जिससे जग उजियाली॥
किरणों का आकर उसको लख, उन पूर्ण-ज्ञान की किरणों को—
निज में पाने उत्कंठित हो, वे सोच चले शिव-वैभव को॥
रति-मूर्ति मनोहर अतिचंचल, सौन्दर्य-लता नीलांजना ने-
जो नृत्य किया संगीत-ताल—रस-भाव-युक्त, तब परिषद् ने-

नर्तन-रस-सुधा-सरोवर में, स्नान-पूत निज गात किया।
पर उस क्षण उसकी मृत्यू ने, सहसा मन पर आघात किया॥
यह देख ऋषभ के मन में था, जो सोया, जाग गया विराग।
अब उनको दिखने लगा विश्व, क्षण-भंगुर यौवन का विहाग॥
लौकान्तिक-गण ने समझाया, उकसाया उनका मन-विराग।
वृषभेश-हृदय से शेष रहा, भी, भाग गया वह विषय-राग॥
वे राज्य छोड़ पुत्रों ऊपर, यति-धर्म-साधना करने को।
दृढ़-निश्चय करके वे उत्सुक, बन गये मुक्तिवर बनने को॥
वृषभेश-सचिव ने परामर्श, कर पुत्र युगल को बुलवाया।
सब पुत्रों को दूँगा समान-अधिकार, हृदय यों हुलसाया॥
पर बाहुबली बोले मैं तो, केवल साधारण मानव हूँ।
मैं चाह रहा पोदनपुर को, जिसका साधारण सेवक हूँ॥
मैं एक अंश का सेवक बन, आदर्श सत्य कर पाया जो।
युग युग तक होगा अमर सत्य, पथ-दर्शक मैं बन पाया जो॥
कर ऋषभदेव ने तब विचार, पुत्रों में राज्य विभक्त किया।
कर दिया भरत को महाराज, इस भाँति सभी को तुष्ट किया॥
संतुष्ट हुआ पोदनपुर का, सेवक बनकर वह बाहुबली।
पर भरत न बोला एक शब्द, माया तृष्णा में सदा पली॥
सब पुत्रों में कर बँटवारा, वृषभेश अधिक निश्चिन्त हुए।
सबको समझाया लोक-धर्म, पर स्वयं लोक से मुक्त हुए॥
कर्तव्य श्रेष्ठ यह राजा का, निष्पक्ष प्रजा में सदा रहे।
हो पूर्ण शान्ति जैसे वैसा, कर, यत्न देश सम्पन्न करे॥
अधिकारि-वर्ग को पुरजन को, परिवार-जनों को समझाया।
मैं लोक मार्ग में श्रेय-मार्ग, बतलाऊँगा यह दर्शाया॥

लौकिक कल्याण करेंगे ये, मैं श्रेय-मार्ग को खोजूँगा।
पा श्रेय-मार्ग का सत्य रूप, उसको जीवन में पूजूँगा॥
कल्याण तुम्हारा सभी रीति—से, होगा कभी न सोच करो।
ये इस भव के मैं पर-भव का, पथ-दर्शक, भूल न मोह करो॥
होते संध्या चल पड़े देव, तम-पार विश्व को पहुँचाने।
बढ़ चले मुक्ति के प्रेमी बन, कर्मों के बन्धन चटकाने॥
खिल पड़ीं दिशाएँ हर्ष हुआ, उनने पवित्र सहचर पाया।
स्वर्गीय पुष्प की वर्षा ने, जगती का अञ्चल लहराया॥
चल पड़े साथ भूपति अनेक, जिनने जग-सुख भंगुर माना।
चल पड़ीं सुनंदा, नंदा भी, जिनने जीवन नश्वर जाना॥
पुर परिजन में था शोक, हर्ष था विजन वनों में लहराया।
वसुधा की प्राकृत सुषमा में, नव नव सुराग था भर आया॥
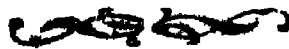
भरत-दिग्विजय

न्यायी निष्पक्ष हृदय का था, जनता का सेवक कहलाता।
साकेत अयोध्या सार्थ बनी, कोई न उसे जित कर पाता॥
जनता विनीत थी जान रही, ये प्रजा-धर्म के पालक हैं।
ये सेवक हैं, यह प्रजा-राज्य, सब में समानता-धारक हैं॥
संतोष शान्ति थी बरस रही, कण कण उल्लास समाया था।
इसलिए भारवाही राजा, निज नाम सार्थ कर पाया था॥
उसका गौरव जनता जाने, जब देश हमारा भारत है।
जिसके प्रभाव के चिह्नों से, यह देश हमारा चिह्नित है॥
चौदह रत्नों नव निधियों का, स्वामी था अजित-शक्ति वाला।
छिद्रान्वेषी जन ने जिसको, निर्दोष कहा सब-गुण वाला॥
निर्माण किया नव "वर्ण", कीर्ति चारों दिगंगना को भाई।
प्रत्येक हृदय में भरत-पाद, पद्मों में प्रीति उमड़ आई॥
बढ़ चला तेज यश गौरव ने, हिम-शिखरी का अपमान किया।
सम शान्ति-कोप के संगम ने, रवि-शशि कोअंजलि दान दिया॥
थे निपुण चक्र के संगर में, इसलिए चक्र के स्वामी थे।
थे राज-नीति में दक्ष धीर, विद्वान परम अभिमानी थे॥
पूजक थे आत्म-विभव के वे, था ब्रह्म एक उनका उपास्य।
थी पुण्य-पाप की माया जो, वह लखती थी इनका सुहास्य॥
उपदेश प्रजा को देते थे, कहते थे भव में सब समान।
अतएव हमें रहना होगा, मिल कर जीवन में बन महान॥

करता अशान्ति जो जनता में, वह दण्ड यथोचित पाता था।
राजा का केवल जनता से, सेवक का समुचित नाता था॥
दानी थी त्यागी कर्म वीर, जनता थी कर्मठ श्रमकारी।
सब-धर्म-समन्वय के रस से, थी हरी भरी जनता सारी।
जागे मद, लोभ अजय बल के, उसने जय की अभिलाषा की॥
सोचा मैं आर्य-अनार्यों से, पुजवालूँ रज पद-पद्मों की॥
मंत्री-गण से कर परिमंत्रण, चतुरंग महा-सेना लेकर।
दिग्विजय-हेतु चल पड़े देव, चढ़ अजितंजित-नामक रथ पर॥
शुभ काल शरद ऋतुका वह था, नदियाँ नियोगिनीसी कृश थीं।
वर्षा का समय व्यतीत हुआ, निर्मल-रस से परिशोभित थीं॥
औद्धत्य नष्ट हो गया, शान्ति, थी छाई उनके अँग अँग।
थी चढ़ी धवलिमा चतुर्मुखी, चढ़ पाता कैसे अन्य रंग॥
नीले नभ से सरसी-सर से, मालिन्य शीघ्र ही दूर हुआ।
कर सज्जन की संगति जैसे, दुर्जन-मन निर्मल सदा हुआ॥
चारों हरितों ने पूर्णविशद, लम्बी आखों से सब देखा।
पायेंगी पति वे अद्वितीय, इसलिए धवल जग को देखा॥
कुसुमित काशों से द्विगुण धवल, यश फैल रहा था शारद का।
गत-पंक भूमि हो गई, समा-पाया न हर्ष रवि किरणों का॥
कमलों में पीत पराग भरी, शाद्वल पुष्पों से पीत धरा।
मानों चक्री के पाणिबंध को, साज गया था भव्य धरा॥
था हंस हंसिनी-संग प्रेम—की, क्रीडा कर अति-सुखधारी।
नदियों का निश्चल वारिमध्य, था शय्या-उपमा-जयकारी॥
हंसों का कूजित मनहर था, मोरों का मौन विराग हुआ।
था शरद नायिका का अकलुष, आदर्श पूर्ण रजनीश हुआ॥

शारद शोभा को लख प्रसन्न, सेना आगे सोत्साह बढ़ी।
उस देख प्रतापी चक्री को, रवि शोभा निष्प्रभ स्वतः पड़ी॥
चक्रेश प्रसन्न हृदय के थे, मस्तक उनका गर्वोन्नत था।
लगती थी देह सुशोभित ज्यों, शृंगार-वीर-रस-संगम था॥
पग पग पर स्वागत गान हुए, नंदन वंदन सत्कार हुए।
सुर बालाओं के प्रति पद पर, आरात्रिक मंगल दान हुए॥
बढ़ चले सूर्य-सम, पूर्व दिशा, में निज-प्रताप को दिखलाने।
पर राजे महाराजे पहुंचे, चरणों में निज को पा जाने॥
उत्तर की जय, पश्चिम की जय, जित म्लेच्छों का था पूर्ण खंड।
इस रीति न दक्षिण बच पाया, हो गई विजित बसुधा अखंड॥
अगणित-सैनिक-उद्भूत रजो—घन- माला ने नभ को छाया।
उसके प्रताप की किरणों ने बिन विद्युत जग को चमकाया॥
सहकारी राजा जयकुमार, मेघेश्वर पदवी-प्राप्त हुए।
निज बल की अद्भुत-कला दिखा, भरतेश-कृपा के पात्र हुए॥
उनके सेवक बढ़ चले, सभी, ने पूज्य उन्हीं को था माना।
गुरु, भर्ता, देव, पिता, माता, उनने सब कुछ उनको जाना॥
दिग्विजय बाद जब से लौटे, कैलाश-शिखर पर वृषभ-नाथ-
की भक्ति-भाव से पूजा की, भरतेश उन्हीं से थे सनाथ॥
कैलाश-शिखर पर बैठे थे, जो मुनी ध्यान में तन्मय हो।
उनको प्रणाम कर चले भरत, अध्यात्म-ज्ञान से शुभमय हो॥
उस समय एक मुनिराज वहाँ, उपदेश-दान में तत्पर थे।
सादर कर नमः भरत उनके, हो गये दृष्टि के गोचर थे॥
उपदेश उन्हीं का सुन कर के, भरतेश हुए अति आनंदित।
उपदेश-अन्त होते मुनिवर, कुछ उनसे बोले हो प्रमुदित॥

वे वृषभ-पुत्र से बोले यह, हो गये मान्य हो जनता के।
जनता की सेवा में जीवन, पर तेरा हो लय समता के॥
तुम न्याय-नीति का पालन कर, मानव-समाज को उन्नति पर
सब रीति करो शिक्षा देकर-परिपूर्ण कर्म-पथ-अग्रसर॥
मद, मोह, लोभ के वश में हो तृष्णा-नागिन से दष्ट हुए।
दिग्विजय-हेतु तुम निकल पड़े, कर्तव्य-मार्ग से भ्रष्ट हुए॥
दिग्विजय-हेतु तुम जाते जब, होता न न्याय या शांति कहीं।
या करते मद उनका प्रशान्त, जिनसे जनता थी छली कहीं॥
अब ध्यान रखो इन बातों का, होवे अशान्ति जो भूल कहीं।
करना सुशान्ति, बलवान धर्म, जग ने माना है सदा यहीं॥
तुम मान न करना भूल कहीं, मद में अनर्थ भी करो नहीं।
यह जीवन पर-हित से कृतार्थ, हो निश्चल मन में धरो यही॥
रत्न-त्रय का आराधन हो. हो स्याद्वाद भी जीवन-निधि।
तुम बनो समन्वय-आराधक निज-कर्माधीन सदा यह विधि॥
कर नमस्कार भरतेश चले निज-देश, अयोध्या नगरी को।
बन गया स्वर्ग पाषाण प्रकृति संपन्न देख उस नगरी को॥
पर पथ में बोला हेमबुद्धि बच गया शेष है पोदनपुर।
इसलिए न हम कहलायेंगे जय कर अखंड भू जीवन भर॥
भरतेश धैर्य से तब बोले, बोले उपाय हो यहाँ कौन।
वह सगा भ्रात मेरा कैसे, होगा अधीन यह कहे कौन॥
वह अनुज हमारा इससे तो, मानेगा अपने को अनुचर।
पर विजित अन्य-सा किङ्कर हो, यह पूर्ण असंभव अति दुखकर॥
उन मुनि ने जो समझाया था, वह आज स्मरण-गोचर है।
क्या विगत भूल को दुहराऊँ, जो तृष्णा की ही पोषक है॥

मंत्री बोला, यह राजनीति, इसमें भाई का प्यार नहीं।
उत्कृष्ट-वंश की वधु जैसी, बलवान-भोग्य यह भूमि रही॥
निर्बल किङ्कर बन रहते हैं, वे स्वामी जो हों महाबली।
सब राज्य बने पद में नत जो, हो गर्वोन्नत क्यों बाहुबली॥
अतएव देव तुम जगती के, अप्रतिम प्रथम जयवान बनो।
पद नत सारी वसुधा जिसके, ऐसे चक्री भरतेश बनो॥
हे देव! दूत को भेज शीघ्र, समझाओ वह आधीन बने।
विपरीत मार्ग जो चले कहीं, तो युद्ध-हेतु सन्नद्ध बने॥
वह दूत चला चक्री का ले, संदेश पोदनेश्वर-समीप।
पोदनपुर राजा बाहुबली, बोले कुशली हैं क्या महीप॥
वह बोला कुशली राजा हैं, उनके मंगल है सदा रहा।
पर पोदनपुर करना अधीन, यह केवल मनमें साल रहा॥
सब भ्राताओं ने उनको ही, अपना स्वामी स्वीकार किया।
इसलिए आप से आशा है, ऐसा उनने सुविचार किया॥
सुन धैर्य-सहित बोले कुमार, मैं अनुज दृष्टि से अनुचर हूँ।
पर नहीं पराजित अन्यों-सा, उनके चरणों का किङ्कर हूँ॥
आधीन चाहते क्यों करना, मैं तो अन्यायी नहीं रहा।
जनता-हित-साधन में जीवन, कर्तव्य समझ मैं लगा रहा॥
है शान्ति सुनहली इस पुर में, जनता पुरुषार्थ समन्वित है।
कर्तव्य-मार्ग उसका निश्चल, जो धर्म-ध्येय से यंत्रित है॥
क्या मान इसी को कहते हैं, जिससे समाज हो आन्दोलित।
क्या न्याय इसी को कहते हैं, जिससे मानव-मद-उद्दीपित॥
कब वैभव जीवन-ध्येय रहा, कब भौतिकता सर्वस्व बनी।
तुम बुद्धि-योग से लो विचार, कब तृष्णा किसकी भली बनी॥

अतएव भरत से कह देना, जो व्यक्त किये मैंने विचार।
मैं जनता से भी पूछूँगा, मेरे विचार क्या हैं उदार॥
चल पड़ा दूत चक्रेश पास, कह दिए पोदनेश्वर-विचार।
घृत से उद्दीप्त-अनल जैसा, बढ़ गया भरत का मद-विकार॥
पोदनपुर की जनता बोली, नृपवर न लेश चिन्ता का हो।
आबाल-वृद्ध इस पुरजन को, निज सेना का सैनिक समझो॥
प्रत्येक देश का सेवक है, देखें किसको वे जीतेंगे।
अभिमान गिरेगा उनका या, उनके साथी भी चीतेंगे॥
देशों देशों में फैल गया, यह भ्रातृ-युद्ध का समाचार।
सब सोच रहे थे देखो तो, इसको कहते हैं कदाचार॥
बन गया अर्थ जीवन सहचर, उठ गया ब्रह्म-पर-भव-विचार।
उठ गया हंत जीवन पथ से, देखो निर्मल अब सदाचार॥
यह चक्र-आर-श्रेणी जैसा, देखो परिवर्तन विधि करता।
फिर भी मानव मानापमान, मद, मोह, लोभ, छलना करता॥
विश्वास उठा नय उठा आज, माया का अंचल लहराया।
जीवन को जीवन जान सका-जो मानव वह शिव बन पाया॥
नय-वृद्ध गुणों से वृद्ध श्रेष्ठ-जनने चक्री को पत्र दिए।
हो नीति मार्ग से कहीं न च्युत, इसलिए शक्य थे यत्न किए॥
पर व्यर्थ हुए सब सतत यत्न, उनका प्रभाव कुछ नहीं हुआ।
बालू से तेल कहीं मानव, क्या कभी स्वप्न में लभ्य हुआ।
माया से चिकने स्वान्त-कलश-पर पानी कभी न ठहर सका।
इसलिए भरत को संगर ही, अभिलाष-पूर्ति को सूझ सका॥
यह समाचार अन्तः पुर में पहुँचा ज्यों ही अतिखेद हुआ।
सब लगे सोचने यत्न किंतु, कोई न मार्ग अनुकूल हुआ॥

भरतेश हृदय की रानी ने, चिन्ता से नाता था जोड़ा।
वह सार्थ सुभद्रा महिषी थी, माया से जिसने मुँह मोड़ा॥
वह लगी सोचने क्या होगा, होगा अनर्थ क्या दुःखकारी।
क्या आज सगे भ्राता लड़ कर, कर देंगे कलुषित यश भारी॥
कुल लाज नष्ट क्या कर देंगे कर देंगे, सब कुछ निराधार।
सर्वस्व हमारी नीति नष्ट-हो गई मान को नमस्कार॥
पोदनपुर-महिषी ने सोचा, शंकर जिनेन्द्र! क्या होवेगा।
क्या किसी मांग की वल्ली से सिंदूर कुसुम भी रूठेगा।
विधि करे न ऐसी कृपा कोर, विध्वस्त वंश हो जावेगा।
इन चाँदी के दिवसों का हा! दुःसह वियोग आजावेगा॥
खलबली मची परिवारों में, क्षण अंधकार का राज्य हुआ।
मानों रजनी-पति-तुल्य वंश, तम से सहसा आक्रान्त हुआ॥
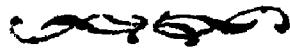
महिषी-प्रयास

भरतेश-हृदय की रानी के, मानस में चिन्ता लहराई।
लहराने में शत शत विचार, भावों की माला गुथ आई।
वह सोच रही थी प्रियतम को, किस रीति कहूँ क्या क्या कह दूं।
किस किस उपाय से समझाऊँ, किस भाँति युद्ध से विमुखकरूँ।।
वे नीति-दक्ष विद्वान परम, अनुपम-निर्दोष-चरित धारी।
वे लोक-ज्ञान के परिचेता, क्या कहूँ यही चिन्ता भारी।।
नारी अचला समझी जाती उसकी सम्मति भी हेय रही।
मैं कहूँ देश क्या सोचेगा अतएव देह चिन्तागिन दही।।
मैं चाह रही समझाने को, परलोक लाज भी रखना है।
मैं कहूँ शिविर में जा कैसे, कुल से विपरीत न चलना है।।
उसकी दासी वेला ने जब, रानी को चिन्ताकुल देखा।
बन गई तीव्र उस ज्वाला को, वह धारागत जल की रेखा।।
स्वामिनि! चिन्ता के क्यों अधीन, आ गई कौन सी बात कठिन।
जिसने असह्य बन कर के यह, कर दिया चंद्र को हंत! मलिन।।
मैं भी जानूँ प्रतिकार करूँ, संभव है मेरे वश का हो।
स्वामिनि! प्रसन्नता पाने को, कह दो असाध्य जो करना हो।।
बोली असाध्य है कार्य नहीं, मेरा मन स्वतः लजाता है।
प्रिय चक्री की मति विमुख देख, मन में विषाद छा जाता है।।
तेरे स्वामी हैं चाह रहे, मैं बाहु-बली आधीन करूँ।
मैं पूर्ण विजेता बन कर के, वसुधा का राज्य अखंड करूँ।।

संदेश दूत से पोदनपुर- राजा ने यह पहुँचाया है।
मैं कभी नहीं आधीन बनूँ, यह ही निश्चित हो पाया है॥
अतएव भरत हैं चाह रहे, अब तुमुल-युद्ध करना होगा।
अन्यथा महत्व की आशा को, विपरीत मार्ग धरना होगा॥
मैं इससे चाह रही दोनों, निज-निश्चय-उन्मुख हो जावें।
दोनों सगोत्र का प्रेम निभा, बंधुत्व विश्व को दिखलावें॥
जब एक पिता के प्यारे सब, तो कहाँ मान का वास रहे।
जब राज्य पिता ने बाँट दिया, क्यों अग्रज, अनुज अधीन करे॥
यह युद्ध न सुखकारी होगा, हैं बाहुबली बलवान महा।
जनता उसके है साथ, उसे, ज्योतिर्विदों ने अजय कहा॥
यदि अन्य राज्य दें उसे योग, यह कौन देखकर आया है!
यह राजनीति इसमें मानव, युग का विकाश चकराया है॥
वह भाई जो भरतेश-दूत- बन पोदनपुर को पहुँचा था।
संग्राम-साज के ज्ञान-अर्थ, वह सब समृद्धि का सूचक था॥
उस भाई ने बन अंतरङ्ग, निष्कर्ष निकाला अन्तिम है।
संग्राम ठान पोदनपुर से, जाना प्राची से पश्चिम है॥
इसलिए चाहती युद्ध न हो, हो संधि किसी भी तरह यहाँ।
पर सफल यत्न मैं होऊँगी, यह निश्चय कैसे कहो कहाँ॥
सुन वेला बोली अवसर के- अनुसार बुद्धि रखनेवाली।
मैं युक्ति सुझाती हूँ स्वामिनि, जो अपना हित करनेवाली॥
तुम चक्री को समझाओ मैं, गुणमाला को समझाऊँगी।
इस विधि प्रयत्न कर निश्चय से, मैं पूर्ण सफलता पाऊँगी॥
नारी करती निर्माण सृष्टि-का, युग परिवर्तन करती है।
आनन्द, शान्ति की स्वर्गंगा, उसके भौंहों से बहती है॥

अपने प्रिय को समझाने में, वह सब उपाय कर सकती है।
उसके आँखों में वह मदिरा, जो मन को उन्मद करती है॥
जो नारी हित का कहती हो, वह कुल उजयारी नारी है।
विपरीत मार्ग चलनेवाली, बनती जो वही अनारी है॥
देवी! जाओ तुम देव पास, मैं गुणमाला समझाऊँगी।
संदेश आपका दे उनको, निश्चित अनुकूल बनाऊँगी॥
भेजी दूती भरतेश पास, अनुमति महिषी ने लेने को।
दूती लौटी अनुमति लेकर, सत्वर रानी से कहने को॥
आरूढ़ पालकी ऊपर हो, रानी पहुँची प्रियतम-समीप।
पर साँझ समय कहता जाता, होगा तम-युत केवल महीप॥
थी शरद्-काल-राका हँसती, रानी का आनन लख सचिन्त।
थी प्रकृति विरोधी तारों से, जो नयन-तारिका दुःख-अनन्त॥
भरतेश-चरण-अरविन्दों की, महिषी मधुपायी बन बोली।
है देव! कुशल, क्यों मानस में, चिन्ता की कल्लोलें डोलीं॥
वे रहे मौन क्षण बोल उठे, रानी कैसे आगमन हुआ।
किसलिए आज कर याद मुझे, विस्मृत आनन्द सचेत हुआ॥
मैं आई हूँ इसलिए, करूँ चिन्ता सुदूर प्रिय के मन की।
हो सके करूँ जिस रीति बने, रक्षित सुकीर्ति अपने कुल की॥
मैं चाह रही दो छोड़ आप, निज-भ्रातृ-युद्धका दुर्विचार।
इतनी वसुधा अपनी करना, क्यों पर की भू पर स्वाधिकार॥
वह लोभ नहीं अच्छा न मान, अपना जिससे हो महा अहित।
हो आप वृषभ के पुत्र, छोड़ दो माया कब किसके अधिकृत॥
थे श्वसुर जिन्होंने जगती का, माया-वैभव नश्वर जाना।
उनने असार संसार जान शिव का पाना सुख कर माना॥

वे अजित शक्ति के बाहुबली, उन से संग्राम न हितकारी ।
करने, अनिष्ट निज कुल का क्या, उत्पन्न करोगे भय भारी ॥
वह न्यायी तेजस्वी सुशील, है महाधीर साहसी वीर ।
जनता उसके है संग और राजा, होगा क्या फल सुधीर ॥
वृषभेश पुत्र बोले, रानी ! यह राजनीति की नीति सही ।
वसुधा वीरों की भोग्या है, विपरीत नीति अतिहीन रही ॥
मैं जीत सकूँगा उसको तो, उसकी हस्ती निर्मद होगी ।
मेरी महत्व की आकांक्षा, परिपूर्ण सार्थ सुखकर होगी ॥
मैं ने जीते सब देश एक, अवशिष्ट रहा पोदनपुर ही ।
उसका स्वामी भी बन कर के, "भारत" कर दूँगा अखिलमही ॥
मैं नहीं चाहता युद्ध करूँ, मेरे अधीन जो भ्रात बने ।
हो नष्ट भ्रातृ का प्रेम नहीं, जिससे सुकीर्तिमय विश्व बने ॥
मेरा होकर अनुजात आज, मेरे वश का वह नहीं हुआ ।
यह सह्य कहां से कैसे हो, जब भ्रातृवृन्द आधीन हुआ ॥
थे अज्ञानी क्या भ्रात सभी, जो बोले मम विपरीत नहीं ।
क्या नहीं जानते थे कहना, जो बाहुबली ने मुझे कहीं ॥
हारी रानी चल पड़ी महल, अन्तः पुर को दुःख में डूबा ।
दुःख सहन न हो पाया इससे, दुःख सागर चिन्ता में बूड़ी ॥
हों क्षीण खेद की रेखाएँ, इसलिए गीत साकार हुए ।
जो घनीभूत थे भाव प्रवण, अतएव लोक साभार हुए ॥

गीत

धिक्कार विजय की अभिलाषा, जिसमें महत्व को मान मिला ।
उठ गया तत्व परिवार-प्रेम, जिस राजनीति को नाम मिला ॥

जब मानव अमर न हो आया, तो मान किया करता किसका।
दो दिन प्रकाश के बाद अंधका राज्य, और होगा किसका॥
वह नीति अमर है मानवता, जिस में अस्तित्व बनाती है।
गंगा-यमुना के संगम सा, जो अपना रूप खिलाती है॥
कह चला चंद्र प्रातः जाते, तम-सत की सदा यहाँ खेला।
जिसके विवेक उसने पाया, गुण रत्नों का इसमें मेला॥
नर धन्य बने जो वैभव को, पर-हित में अर्पण करते हैं।
केवल अनंत की लक्ष्मी का, जो राज्य अनश्वर लखते हैं॥

गीत

माया कौन की प्यारी !
जिसने इसको जीत लिया वह रहा न संसारी !
भूला मानव मोह-मद्य पी भूला निज का वैभव।
भौतिकता सर्वस्व मान कर, सत्य विभूति-विसारी॥ माया॥
बिजली सहसा चमक चमक कर उत्कण्ठा भरती।
पर गिर कर लय करती है वह, चेतनता सारी॥ माया॥

गीत

ज्योतिमय हे ज्ञान के आधार !
सत्य तेरा विश्व में आकार !!
लोभ में जो रङ्ग लेते, छोड़ते निज-प्राण।
दीपलौ में चल पतिंगे सी उन्हीं की जान॥
मेघ से होते विनश्वर, इन्द्रियों के भोज्य।
देखता करता न मानव, प्रेम निज से शोच्य॥

पंच इन्द्रिय मधुप इनके, विषय, कौसुभ-भोग्य।
रोग इनसे वृद्धिगत हों, हो कहां आरोग्य॥
मनुज का है धर्म केवल सार! ज्योतिमय!!

गीत

दुनियाँ स्वार्थ घटना री!
दूर कर पट कुसुम-मुख से, भ्रमर चूस पराग।
छोड़ते उनको विरस कर, हंत! जीवन जाग॥
विश्व का व्यापार छल ना री!

गीत

काम-क्रोध-मद-मोह-लोभ की दुनियाँ घातिनी!
कल-संगीत-प्रेम से उन्मन, हरिण न लखते प्राण।
भ्रमर बंद हो कमल-मुकुल में रह जाते अनजान॥
मत्तता सर्व-विनाशिनी!

शलभ ज्वाल से खेला करते, सर्प स्वरों से नेह।
पश्चिम दिशा विहंसती बढ़ती, चट करती है देह॥
नियति की लीला वारुणी!!

बिजली चंचल चमक अनोखा, दिखलाती अति रंग।
धनी, मानियों के मद का, क्षण में हो जाता भंग॥
बुद्धि की सत्ता हारिणी!

दूती वेला ने गीत-अन्त, होते ही आ संदेश दिया।
गुणमाला ने भवदीय बुद्धि-का आदर, हर्ष विशेष किया॥

बोली सचेष्ट मैं भी हूँगी, मत मूल अन्यथा सोच करो।
होगा संभव जो वश का तो, इस में विधि का विश्वास करो॥
रानी बोली भरतेश नहीं, माने न विचारा हितकारी।
वे युद्ध जानते केवल हैं, जो होगा उनका हितकारी॥
मैं लौटी असफल हो करके, अब कहाँ सफलता होवेगी।
दिख रहा अंत में यह सुयुक्ति, निश्चित ही निष्फल होवेगी॥
गुणमाला ने मध्याह्न-समय, प्रियतम से निर्भय यही कहा।
दो भ्राताओं का युद्ध नहीं, सुखकारी होगा, दिखा रहा॥
यह राज्य रहा किसके संग में, किसकी माया यह सगी रही।
फिर चिन्ता हो किस लिए, राज्य दे दो, उनके आधीन सही॥
बोला महीप मैं राज्य हेतु-हूँ नहीं युद्ध करने उद्यत।
मैं चाह रहा नय अजय रहे, अन्याय नहीं हो निरबाधित॥
अन्याय यही जो मुझको वे, अपना अधीन हैं चाह रहे।
निज-दास बनाने को देखो हा! वंश-नीति को त्याग रहे॥
है भ्रातृ-प्रेम का नाम नहीं, है प्रजा-शान्ति का आलोडन।
केवल महत्व की आकांक्षा, करने बैठी मन-परिवर्तन॥
मैं प्रिये, तुम्हारे कहने का, प्रतिरोध नहीं ही कर पाता।
अन्याय-विरोध सदा करना, यदि शक्य, नीति दुखकर पाता॥
उत्तर से हीन हुई विदुषी, गुण माला ने धीरे बोला।
जैसा विचार हो सुखद देव! वैसा हो कार्य यथा वेला॥

भ्रातृ-युद्ध

दो भ्राताओं का तुमुल समर, होगा राजाओं ने जाना।
यह घटना अश्रुत-पूर्व हुई, ऐसा उन सब ने था माना॥
राजा दो दल में भक्त हुए, संनद्ध हुए निज स्वामी को—
देने सहायता रण—भू में, निज-पक्ष-विजय के कामी को॥
जनता चिन्तित थी, भ्रातृ-युद्ध, परिणाम कौन सा लावेगा।
दो भ्राताओं के संगर में, जय कौन पक्ष पा जावेगा॥
दोनों बलवान प्रतापी हैं, तेजस्वी इन्द्र-विजय कारी।
दोनों की सेना है प्रचण्ड, संघटित राज्य भी सहकारी॥
था, आतप का आरंभ, अमा–रजनी—भू आग उगलती थी।
पर सेनाओं ने विजय हेतु, साहस की मदिरा पी ली थी॥
निज स्वामी की आज्ञा–पालन करने, वे बढ़ते थे जाते।
सुन भेरी का भैरव निनाद, युद्धार्थ मत्त होते जाते॥
पैदल सेनाएँ आगे थीं, जो भीषण अस्त्र-शस्त्र धारी।
जिनका आकार विशाल मृत्यु–पति की जैसे हो तैयारी॥
लहराती रक्तिम दीर्घ-ध्वजा, यम की जिह्वा सी लगती थी।
करवाल चमक मैं धवल कीर्ति, झट प्राप्त करूंगी कहती थी॥

थे तीक्ष्ण-शैल-धारी कहते, हम गिरियों को ढा देवेंगे।
अरि-सेना-वारिधि को अगस्त्य—सम पल में घूँट बनावेंगे॥
परशू कहते थे निर्भय हो, पर-महिला-भ्रूण गिरावेंगे।
थे गदा शान्ति में कहते पर, हम अगद अरी को भावेंगे॥
तोमर-धारी थे खर-स्वभाव, पर बड़ी कृपा के धारी थे।
तो छोड़ करेंगे शत्रु अमर, पाणिनि-सम पण्डित भारी थे॥
थे भिन्दिपाल चल जैसे थे, अभ्यास भेदने का करते।
थे शान्त चक्र ऐसे जैसे, विष-कलश सौम्यता को धरते॥
थी अग्निबाण से ज्वालाएँ, अंगारों सी निकलीं दिखतीं।
अरि-सेना का जीवन जैसे, क्षय कर देंगी प्रति पल जलतीं॥
थे नागपाश दो—गुण—धारी, बंधन-सुनियंत्रण-कर्ता थे।
अरिनागों को थे नागपाल, अतएव शत्रु-संहर्ता थे॥
पैने-शर-सज्जित-सैनिक थे, सज्जित थीं वामी—नलिकाएं।
थीं नलिकाएँ लम्बी, लज्जित—करतीं, ज्वालागिरि-उपमाएँ॥
क्रकचों के कर्ण-कटूरव थे—अरि-देहों के शत खंड करें।
दें दान काक गृद्धों को हम, सूकर स्यालों को तृप्त करें॥
भाले थे खर लगते ऐसे, अरियों के मन में सालेंगे।
उनके अभेद्य तनुत्राण कवच, तृण-सम भेदन कर डालेंगे॥
तिरसूल न उनके कुण्ठित थे, खरतर भालों से बढ़ कर थे।
कर देंगे अरि को सूर्य-भेद्य, ये मौन उन्हीं के प्रिय-रव थे॥
थी चिन्तित पद्मा पद्मों से, हल चाह रहे थे हल करना।
समुशल था शस्त्र भयंकर जो, कहता कुठार समता करना॥
वारुण दारुण था, तामस था, जीवन अंधा करने वाला।
था वज्र! पूर्ण अनभेद्य अतः यम को भी भय देने वाला॥

अश्वों का सैन्य, सबल हेषा– उनकी कठोर मन दहलाती।
निज स्वामी की जय-ध्वनि सुनकर, उनकी छाती फूली जाती॥
वे टाप सम्हल यों रखते थे, अभ्यास आक्रमण का करते।
वे होड़ पवन से लेते थे, पवनाश्वों को निर्मद करते॥
थे अश्व अंग-रक्षक-भूषित, था अंग—अंग में साहस बल।
विस्फूर्ति मात्र जो गोचर थी, करती थी कंपित वसुधा-तल॥
अश्वारोही थे सावधान, अश्वों में भरते साहस थे।
हम आरोही अरि के शिर के, उनके कठोर तीखे रव थे॥
भू थी रज से आपूर्ण अतः, संयोग-दोष से देहों को—
करते पवित्र स्नान किए, करते थे रजयुत नदियों को॥
रथ जाते सरपट धीरे से, निःशब्द भूमि-क्षत बिना किये।
थे रथ के घोड़े पवन-सदृश—निर्भीर, पराक्रम-योग लिये॥
रथ पर लहराती चपल ध्वजा, शोभित थी मानों वारुण की—
जिह्वा चंचल, जो बता रही—थी, होगी सेना यम-गृह की॥
बन गये सभी गज सिंधुर थे, गज-पालक यंत्रण-कर्ता थे।
हो कर विशाल देही सिंधुर—भी, होड़ पवन से लेते थे॥
इस तरह सबल चतुरंग सैन्य, दिक्पालों को भयकरी हुई।
उड़ती धूली से व्याप्त गगन—था, ज्यों दुर्दिन-आक्रान्त हुई॥
गम्भीर घोष का प्रतिध्वान, जो शैल-गुहा से निकला था।
मानों सिंहों की, मेघों की—गर्जन का तर्जन करता था॥
भू डोली कांपित मेरु हुआ, था शेषनाग भी घबराया॥
हिमवान हिला रण चंडी ने, उत्सव का कारण था पाया॥
चल पड़ी राक्षसों की टोली, मुण्डों की माला [illegible]।
खप्पर थे हाथों में उनके, कर रहा नृत्य [illegible] महाकाल॥

भूतिनी राक्षसी-गण-मुख से—नागिन सी निकला करतीं थीं।
उनके भूचुम्बी शिरोरुहों—की लटें भयंकर लगतीं थीं॥
इस भांति काल ने उत्सव के, पूरे थे साधन जुटा लिए।
ताण्डव को प्रस्तुत हुई मृत्यु, चण्डी का रौद्र-स्वरूप लिए॥
बढ़ चली सैन्य राजाओं की, प्रातः जा पहुँची युद्ध-स्थल।
जो सूचक था होगा प्रकाश, घन-अंधकार के बाद सफल॥
सब सोच रहे थे दृश्य देख,संहार व्यर्थ में होवेगा।
इन वीरों को लख मृत्युंगत, वसुधा का वैभव रोवेगा॥
अतएव भरत के मंत्री ने, सचिवों से करके परिमंत्रण।
प्रस्ताव रखा सब के समक्ष, कर दुख कर साहस-परियंत्रण॥
प्रस्ताव यही था दोनों के, हो जावे बल का सुसमीक्षण।
जो जीतेगा वह पावेगा, जय-लक्ष्मी, बल का परिजृंभण॥
उन भरत भूप औ, बाहु-बली, दोनों ने यह स्वीकार किया।
दोनों ने सोचा सचिवों ने, यह अत्युत्तम प्रस्ताव किया॥
हो मुक्त-कंठ सबने उनकी- स्वीकृति की अधिक प्रशंसा की॥
जनता ने कहा कि सचिवों ने. शुभ युक्ति सुझाई अवसर की।
बल का सुसमीक्षण कैसे हो, यह प्रश्न सामने हुआ कठिन।
आये सुझाव भी भिन्न भिन्न, पर दुर्लभ था सबका पालन॥
संमति-प्रदान से निश्चित कर, निर्णेता-गण को युद्धों को।
सब शान्त हुए निश्चल जैसे, होगी सुशान्ति सारे जग को॥
युद्धत्रय निश्चित किये गये, थी हर्ष लहर तब लहराई।
दोनों पक्षों में दोनों के, बल की चर्चा भी छिड़ पाई॥
सब राजा निज निज पक्षों की--जय की अभिलाषा करते थे।
प्रतिक्षण प्रतिपल प्रतिसमय ईश-का, नाम कण्ठ में रखते थे॥

सन्मुख प्रतिसम्मुख सब बैठे, थी सभा शान्त गंभीर बनी।
थी इन्द्र-सभा की शोभा भी, उस सभा सामने हीन बनी॥
पहिले आने से बाहुबली-के सभा मध्य यों शोभित था।
ज्यों अन्तिम-रत्न-समागम से, अति शोभित रत्न-युगल होता॥
भरतेश पधारे सभा-मध्य, उस दीप्र शुक्र से चमक उठा।
नक्षत्र-सभा शोभित नभ में, होती ज्यों शुक्र चमकता था॥
निर्णेतांगण जनता-मण्डल, सब सोच रहे थे विधि-रेखा।
इस वैभव में जो मस्त रहा, उसने सुनेह को कब देखा॥
भाई भाई लड़ रहे आज, यह धन की ही तो लीला है।
यह राज्य कौन के रहा संग फिर भी तो अंध प्रमीला है॥
इस रीति सचिन्त सभी दर्शक, अपने मानस में सक्रिय थे।
पर नभ के ग्रह निस्तब्ध, कुफल-दर्शन प्रति हुए परांमुख थे॥
था प्रथम दृष्टि का युद्ध सभी, दर्शक कौतूहल-युक्त बने।
दोनों की दृष्टि-परीक्षा की, अतिसूक्ष्मतया निर्णेता ने॥
भरतेश-नयन मद-रक्तिम थे, ज्यों चाह रहे जग चूसेंगे।
थे कर्ण-प्रान्त तक लम्बमान, ज्यों विकच कमल को मूसेंगे॥
पर बाहु-बली का नेत्र-युगल, अतिशान्तिसुधा बरसाता था।
था कृष्ण, कार्य था उज्ज्वलतम, यह तो विरुद्ध ही नाता था॥
मध्याह्न-समय के सूर्य-ओर, भरतेश न क्षण भर हेर सके।
पर बाहु-बली तो निर्निमेष, उसको यथेष्ट थे देख सके॥
हो सिंह-सदृश जब दोनों ने, दोनों को देखा दृष्टि गड़ा।
पर चक्री का था चक्षु-द्वैत, तत्क्षण निमेष की ओर बढ़ा॥
इस प्रथम युद्ध में भरत-हार, था प्रथम ग्रास में मक्षि-पतन।
इसलिये बनी थी भरत-पक्ष — नौका चिन्ता में निबंधन॥

थे भरत सोचते अबकी तो, मैं दे दूँगा इनको पछाड़ ।
वसुधा, अंबर, गिरि डोलेंगे, मैं दूँगा जब निर्भय दहाड़ ॥
था प्रथम पक्ष का प्रोत्साहन, चक्री का था उत्साह बढ़ा ।
पर बाहु-बली का रोम-रोम—था युद्ध हेतु संनद्ध खड़ा ॥
जल-युद्ध दूसरा निकष बना, "चोखा बल निकलेगा किसका ।"
यह मौन प्रश्न था जटिल बना, निर्णेतागण-दर्शक-गण का ॥
अतिनिर्मल वारि सरोवर में, दोनों ही आकर लीन हुए ।
पर देख उन्हीं की मुख-शोभा, कमलों के अंग मलीन हुए ॥
कल्लोल सरोवर में उठतीं—थीं हर्ष-लहर जैसे उसकी ।
जल की निर्मलता हँसती थी, लख शोभा उनकी आकृति की ॥
लहरें लहराती मिलती थीं, कहती थीं जीवन ऐसा हो ।
आ गये पुण्य से बंधन में, क्यों प्रेम-बंध-उन्मूलन हो ॥
दोनों थे सुन्दर कामरूप, जैसे जलपति के ये जानो ।
दो अद्भुत-शक्ति सरूप हुईं, इस कल-कल जल में या मानो ॥
जल-युद्ध हुआ प्रारंभ, लगे—नैपुण्य दिखाने दोनों ही ।
लगता जनता को ऐसा था, जैसे समान हों दोनों ही ॥
जल-उच्चाटन, डुबकी, आसन, इनमें समान वे अजय बने ।
पर पार सरोवर करने में, थे बाहु-बली ही जयी बने ॥
इस अन्य युद्धमें हार देख, भरतेश-पक्ष-मन कुम्हलाये ।
भरतेश हुए ऐसे सनद्ध, जिससे न अनुज जय पा पाये ॥
झुंझलाये खिजलाया मन अति, लट शिरोरुहों के डोल उठे ।
ग्रीवा डोली तनु काँप उठा, थे रोम रोम बन दण्ड उठे ॥
भौंहें तानीं मुख बक्र बना, दांतों पर दांतों का जमना ।
ओंठों को ओठों ने दाबा, मुखका यम-सा भीषण लगना ॥

धमनी-धमनी में रक्त हुआ—संचरित तीव्रतम वेग लिए।
बहता जैसे हिम ग्रीष्म समय, अविरल भिन गतिमें रोध हुए॥
प्रत्येक अंग बन गया तप्त—आयस का निर्मित अवयव-सा।
जग धैर्य उठा हो गया भस्म, जैसे शरीर था जीवन का॥
आंखों में ज्वाला शैल-युगल, ज्यों समा गये यह दिखता था।
शिव-नेत्रों से ज्यों मदन भस्म, हां बाहुबली यह लगता था॥
पर बाहु-बली थे महाशान्त, गाम्भीर्य सौम्यता झरती थी।
यह रौद्र-रूप की काली भी, आहों को रह रह भरती थी॥
पोदनपुर की जनता सहर्ष—थी मौन-भाव-अवलंबन था।
गम्भीर शांत थी धैर्य-युक्त, जैसे जड़ता का संगम था।
कुछ क्षण बीते दोनों आये, था मल्ल-युद्ध अन्तिम निर्णय।
दोनों ही लगते थे मानों, हो एक सुनय, चक्री दुर्नय॥
दोनों का आकर्षक अन्तिम, यह युद्ध-दृश्य अप्रतिम बना।
इस समय भूमिका पूर्ण भाग, होगया सघन से सघन भना॥
दोनों को निज निज-पक्षों के—राजाओं ने उत्साह दिया।
गत युद्धों से दो गुना प्रहर, इस मल्ल-युद्ध ने पार किया॥
आजानु-बाहु-बल्ली उनकी, थी जंघाएँ कदली-समान।
जब आए रण में युद्ध-हेतु, बन गईं वज्र शुभ्रोपमान॥
तालों का रव, रण-भेरी-रव—बन लया सभी थे सावधान।
इस समय सभी को जान पड़ा, दोनों ही निकलेंगे समान॥
ग्रीवा—कंधा के हस्त-पाद-के, दाव देखते बनते थे।
सुप्रसिद्ध मल्ल भी देख जिन्हें, अपने को धन्य समझते थे॥
ऐसा लगता था चक्री अब, जय पावेंगे निश्चय मानों।
पर दो क्षण बाद बना निर्णय, है बाहु-बली को जय जानों॥

धर पटक, उठा औं पटक मह्रा, था विस्मय-कारक दृश्य बना।
सुन तालों का रव बार-बार, दिग्गज-गर्जन था होन बना॥
उत्तर हुँकार दिया करती—थी, एक दूसरी हुँकृति का।
वह स्मरण दिलाया करती थी, अतिभीषण धनु की टंकृति का॥
थी उलट पुलट उनकी ऐसी, जैसे विद्युत से यंत्र-चलन।
कंपन सिहरन क्षण-क्षण उठती. जन नेत्रों का था परिमुद्रण॥
यह संगर था अन्तिम संगर, जिसमें भरतेश न जयी हुए।
जंघे से दोनों हाथों में—ले बाहुबली से रखे गये—
भूपर, शोभित होते थे यों—ज्यों माँ की गोदी में बालक।
उस समय भरत को ज्ञात हुआ, भ्रातृत्व हुआ कैसा पालक॥
भरतेश-पक्ष अतिम्लान हुआ, नयनों में निष्क्रियता आई।
वसुधा की संगति से मानों, थी निष्क्रियता उनने पाई॥
पोदनपुर था अतिआनंदित, गृह-गृह में उत्सव थे भाये।
जैसे जनता ने वरद पुत्र, कुल-दीपक हितकर थे पाये॥
निर्णय था बाहु-बली पोदन—पुर के हृदयों के हार बने।
जय लक्ष्मी के अप्रतिम ईश जन राज्य-धर्म-आधार बने॥
उन विजयी के जय लक्ष्मी के—रव ने पयोधि-गाम्भीर्य हरा।
उन बाहु-बली का हुआ कण्ठ, जयमालाओं से पूर्ण भरा॥
चक्री का मद हो गया चूर्ण, पाया जनता का तिरस्कार।
नभ से वाणी आई सहसा, धिक्कार भरत है बार बार॥

———

राज्या-भिषेक

जय लक्ष्मी पाई निःस्पृह ने, निर्मल यश तीनों लोकों में।
पर सोच रहे थे बाहुबली, क्या माया अनुपम भुवनों में॥
यह वैभव किसके साथ रहा, है आज यहाँ कल वहाँ नहीं।
इस लक्ष्मी का विश्वास कहाँ, चपला भी क्या स्थिर रही कहीं॥
यह राज्य रमा कुलटा सी है, जो इसका यंत्रण करते हैं।
हो अनासक्त निःसंग स्वतः वे जग का रक्षण करते हैं॥
मधु सी मादकता इसमें है, पर कुल की यह संहारक है।
पति-पत्नी-भ्रातृ-भगिनि-माता-पितु-प्रेम-स्नेह को घातक है॥
मद किसी रूप में नित्य नहीं, मैं जीता कैसे मान करूँ।
यम गलित करेगा मद मेरा, मानव कैसे अभिमान करूँ॥
बल नित्य नहीं, धन नित्य नहीं, विषयों का सुख कब नित्य रहा॥
ले जाता काल न कोई भी—प्राणी को रोके, सत्य कहा॥
गर्भावस्था से लेकर के-बृद्धावस्थातक सौख्य नहीं।
स्थिर सौख्य दिखा जिनको, उनकी-अनुभूति-बुद्धि है क्षीण हुई॥
विषयों का सुख तो क्षणिक रहा, चपला की चंचल-गति जैसा।
अचपल मानेगा कौन इन्हें, होगा मानव वह भी कैसा।

नित देश-काल की स्थिति को ले, पात्रानुकूल परिवर्तन है।
इह-लोक-व्यवस्था मानव-कृत, जिसमें कर्तव्य-नियंत्रण है॥
वह जीवित है जो देख-देख, पग सदा बढ़ाता जाता है।
केवल विवेक का जीवन से, रहता अभेद्य ही नाता है॥
हल करो समस्याएं उनमें, मानव कर्तव्य न छूटा हो।
सुख-शान्ति-समन्वय जीवन में—जो श्रेष्ठ नहीं वह रूठा हो॥
पर भूल गये कर्तव्य वही, जो शान्ति विश्व में लाता है।
हम रहें लोक में कैसे यह, जो पूर्णतया बतलाता है॥
निर्णय पर पहुँचे बाहु-बली, यह राज्य भ्रात का हो जावे।
हो अंकित वसुधा उनसे ही, मेरा कल्मष भी धुल जावे॥
यह सोच प्रजासे ले अनुमति, निज-राज्य भरतको सौंप दिया।
निज अपराधों की क्षमा मांग, मन वृषभ-दिशा की ओर किया॥
जनता से बोले क्षमा करो, अपराध भूल जो मैंने की।
भूपों से बोले कृपा बने, व्यवहृति की मम अज्ञानी की॥
परिवार-जनों से बोले अब, अनुमति मुझको जाने की दो।
जो सत्य अंत में जीवन के, उसकी भी रेखा पाने दो॥
मुझको स्वीकृति दो सफल बनूँ, कल्याण करूँ निज का पर का।
पर परिवारी थे मौन लिये, कमलों में जल-निर्भर छलका॥
गुणमाला बोली देव! मुझे, अनुमति दो मैं भी संग चलूँ।
पर बाहु-बली बोले सधैर्य, क्यों दे अनुमति मैं अहित करूँ॥
यह वत्स महाबल है जिसका, अब भार तुम्हीं पर निर्भर है।
इसलिए पूर्ण कर्तव्य निभा, मातृत्व निभाना हितकर है॥
यह योग्य बने जैसे वैसा, सक्रिय प्रयत्न करते रहना।
हो अंश, देश का उन्नायक यह कथन हृदय में दृढ रखना॥

परिवार शान्ति का केन्द्र बने, यह सब तुम पर आधारित है।
हो नारी-सत्य चिरन्तन यह, ऐसा मेरा आकारित है॥
पत्नी का मस्तक नत जो था, वह चरण-कमल से मिल बैठा।
दो हाथों से ली धूलि लगा—मस्तक में, स्वीकृति दी पैठा॥
वे चरण, चार पद्मों का दो—चंद्रों का भार न सह पाये।
हो कर कठोर-मन धैर्य रखा, नयनों में अश्रु छलक आये॥
प्रत्येक हृदय था करुणाप्लुत, सब डूबे नेह-सरोवर में।
यह करुणदृश्य था शिल-द्रावक, आई करुणा थी कण-कण में॥
संपन्न देश की सुषमा ने, था पूर्ण विराग लिया जैसे।
अव्यक्त दीर्घ श्वासें भरता—था स्वर्ग हुआ ईर्ष्यित जैसे॥
भरतेश पास जा बाहु बली बोले भ्रातः अपराध क्षमा—
कर निर्भयता दो दान मुझे, मैं देखूँ जग में क्षमा-क्षमा॥
भरतेश-हृदय भी पिघल उठा, मद उनका उस क्षण हुआ चूर्ण।
हो गया कंठ गद्गद, सवारि-जल जात, हृदय था स्नेह पूर्ण॥
बाहू से बाहू मिला, हृदय से हृदय, कंठ से कंठ मिला।
मानों नभ-गंगा-कर्म-भूमि—को, गंगा का उपकंठ मिला॥
भ्रातृत्व-प्रेम की गंगा में, दोनों ने निज को नहलाया।
थे मौन अक्षि, डूबी मधु में, मुद्रित पाँखें मन भर आया॥
भरतेश मौन कर भंग शनैः, अतिविनत स्वरों में बोल उठे—
भ्रातः अपराध कहाँ तेरा, पाषाण हृदय सुन पिघल उठे॥
मैं अग्रज, तममय अग्रज हूँ, मैं यमुना का था नीर बना।
तुम पावन मंदाकिनी-वारि, संगम द्वय का गम्भीर बना॥
तुम भाई, मेरे पूत-हृदय, तुम कहाँ तुम्हारा चरित कहाँ।
तुम छोड़ चले तरु-पात-सदृश, मैं पाऊँ तुम-सम भ्रात कहाँ॥

मेरा केवल अपराध रहा, जो सब कुछ समझा मद, वैभव ।
हो गया दूर, हो गया चूर्ण, पा गया आज वह भी परिभव ॥
मैं चाह रहा हूँ, साथ चलूँ, जो जीवन में अतिहितकर है ।
मैं भी तो जान गया हूँ, इस—वैभव में रमना दुःखकर है ॥
पर बाहुबली बोले उदार, यह समय नहीं जग-सुखकर है ।
होवे अशान्ति जो काल-मेघ, शम मात्र आप पर निर्भर है ॥
अतएव आप शासन से सब—देशों को नय से तुष्ट करो ।
अन्याय कहीं पा सके न जय, ऐसा जनता को पुष्ट करो ॥
पर भरत-दृष्टि से नीर-सरित—धारा अविरल बहती जाती ।
मानों मन में के कालुष को, अविरल अबाध-गति से धोती ॥
पा किसी रीति से बिदा बंधु—से, बाहु-बली आगे आये ।
भरतेश चले संग पहुँचाने, परिवार-वृन्द भी बौराये ॥
जनता थी पोदनपुर की अति—दुःख-सागर डूबी खेद खिन्न ।
पर भरत-पक्ष के कतिपय थे, अज्ञानी राजा मन-प्रसन्न ॥
उद्दिष्ट-दिशा तक पहुँचाने, जनता-भूपति-मंत्री आये ।
कर नमः वृषभ के चरणों में, सब ने नयनों के फल पाये ॥
उस समय सभा में वृषभ देव, उपदेश-दान में तत्पर थे ।
जनता के स्वान्त-चकोर-युगल, शशि-सुधा-पान को जागृत थे ॥
वे बोल रहे थे मुनियों का—संयम, कठोर जिस में शासन ।
गति में स्थिति और शयन, जिनमें, वचनों में संयम-निर्धारण ॥
भावों की होवे उच्च-स्थिति, इसका परिपूरण उसमें है ।
नयनों से पूर्ण निभालन भी, निर्मल दर्शन, सब उसमें है ॥
कृशकरण देह का, निर्मलता—भावों की दोनों आवश्यक ।
हठ-बुद्धि बने जो एक पक्ष, यह तो केवल है अपकारक ॥

यह धर्म महान कहा जिसमें, अपरिग्रह पूर्ण कहा जाता।
यह तो प्रतीक उस सत का है, जिससे शिव-लक्ष्मी का नाता॥
वे सत का पालन करते हैं, उपदेश दिया करते सत का।
वे सहते सब मानापमान, है आत्म-ध्यान केवल उनका॥
उनका निवास एकान्त जहाँ, सौन्दर्य प्रकृति का बरस रहा।
मानव-हित-दर्शन-हेतु किन्तु, रहते हैं तत्पर, सुखद महा॥
वे जग-रक्षण के लिए कभी, कटिबद्ध बनें यह निंद्य नहीं।
परिशुद्धि भावना से होती, यह सदा श्रेय की नीति रही॥
यह देश काल की स्थिति को ले, अनुकूल, सर्व-हितकारक है।
है कठिन नहीं यह सरल किन्तु, पालन बंधन-परिहारक है॥
उपदेश हुआ, सब शान्त भव्य, जनता के मानस विकच गये।
शंका-संशय का उच्छेदन, हो गया, दुःख सब भूल गये॥
आनंद हुआ उनको जैसे, आनंद देश के वासी हों।
वे भूल गये अस्थिर लीला, सुख-पात्र हुए अविनाशी हों॥
उठ बाहु-बली ने जा समीप, वृषभेश-चरण को वंदन कर।
दीक्षा देने के अर्थ किया, आग्रह बहुबार निवेदन कर॥
ली बाहुबली ने दीक्षा जब, वह सभा प्रशंसा करती थी।
वे धन्य-चरित, जो उपकृति कर, छोड़ें जग-लीला, कहती थी॥
संयम के चरम उपासक बन, वन उपवन बाहुबली डोले।
था कौन जितेन्द्रित इन जैसा, जो इनकी समता को पाले॥
थी कठिन तपश्चर्या उनकी, थी ग्रीष्म-शीत-समता उनमें।
ऋतुएँ समान सब बन बैठीं, सबका प्रभाव सुखकर उनमें॥
औषधि, तप, बल, रस, क्रिया, बुद्धि, हो गई विक्रिया स्थान, ऋद्धि।
इस रीति न पाई ऋषिवर ने, वह कौन रिद्धि वह कौन सिद्धि॥

बन-प्राणी मित्र बने, सबने, निज-वैर जन्म-गत त्याग दिया।
सिंहनी-हरिण के शिशुओं में, गौवत्स-सदृश था प्यार हुआ॥
इस ओर भरत-राज्याभिषेक, हो गया देश-जन-सुखकारी।
जनता ने, भूपों ने जाना, होगा भविष्य मंगलकारी॥
सबने मिल घोषित किया कि अब, यह भरत-राज्य, 'भारत' होगा।
वे चक्री होंगे मान्य वंद्य, शासन जनता-अधिकृत होगा॥
भरतेश नम्र होकर बोले, मैं सेवक सबका साधारण।
जनता की सम्मति मान्य सदा, सन्नीति बनेगी सुख-कारण॥
मेरे शासन में सभी देश, निज-जन-उन्नति कर सकते हैं।
जो देश शान्ति के संरक्षक, वे कार्य पूर्ण कर सकते हैं॥
यदि बने कार्य उनका सबका, अपकारक, सह्य नहीं होगा।
"जन-धर्म राज्य का धर्म बने", निष्पक्ष नीति-पालन होगा॥
पोदनपुर का राजा होगा, होते सुयोग्य मम बधू-पुत्र।
ज्योतिषियों ने बोला भविष्य, होगा सुपुत्र जग का अमित्र॥
भरतेश घोषणा कर सचिवों—के साथ वृषभ के पास गये।
कर नमस्कार, देवाधिदेव!, दो आशिष उनने वचन कहे॥
वे मौन-भाव से थे बोले—चक्री! कल्याण तुम्हारा हो।
यह अखिल मही संपन्न बने, जैन-धर्म प्राण से प्यारा हो॥
पश्चात् अनुज के चरणों में, सादर जा मस्तक झुका दिया।
वरदान हृदय से जन-हितकर, उनने निर्मलतम प्राप्त किया॥
शब्दों से सुधा बरषती थी, सब थे चकोर से उत्कण्ठित।
हो गया सार्थ प्रत्येक शब्द, उन हृदय-शिला पर उट्टंकित॥
उनने वरदान दिया निर्मल, हो बिना पक्ष का हृदय सरल।
प्रत्येक राज्य का जन पाये, संरक्षण, उन्नति का परिमल॥

कर्तव्य बने चक्री का यह, हो सदा शांति का संरक्षण।
हों दण्डित अन्यायी जो हों, हो दुष्टों का दृढ परियंत्रण॥
ओंकार बोल, कर पद-वंदन, जय बाहु-बली की सब बोले।
सुन तीव्र-स्वरों के प्रतिस्वर को, जगती, अम्बर, गिरिवर डोले॥
"जय वृषभ-देव, जय बाहुबली"—की, ध्वनि ने जग को गुंजारा।
वह हर्ष-दिवस लगता था ज्यों—हो गयी पुण्यमय पूर्ण धरा॥

लेखक की रचनाएँ-

प्रकाशित

१. बाहु-बली (काव्य)

अप्रकाशित

२. अञ्जलि (कवितासंग्रह)

३. मुक्ताहार (,,)